शिक्षा अधिकार कानून

नवउदारवाद का नया चेहरा

प्रो. अनिल सद्गोपाल

प्रो. अनिल सद्गोपाल शिक्षा के अधिकार कानून को नवउदारवादी एजेण्डा के एक नए पैंतरे के तौर पर रेखांकित करते हैं। इस कानून की खिलाफत करते हुए वे कहते हैं कि यह कानून बजाय मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में बेहतरी के इसकी खामियों को यथावत बनाए रखने में मदद करेगा। उनका मानना है कि शिक्षा के अधिकार को सही मायने में तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब सभी बच्चों के लिए समान गुणवत्ता की शिक्षा मुहैया कराने के लिए पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल प्रणाली को लागू किया जाएगा।

आदरणीय प्रो. फुरकान कमर, कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय; इस सभा के अध्यक्ष श्री मरुधर मृदुल एवं साथियो। बाजार और नवउदारवाद के जिस ऐतिहासिक दौर से भारत अभी गुजर रहा है, इसमें ऐसे विरोधाभास मुमकिन हैं कि समाजशास्त्र विभाग में यह व्याख्यान आयोजित हो रहा है। मैं प्रो. कमर के शब्दों का समर्थन करता हूं कि जहां भी गुंजाइश हो, उसका पूरा उपयोग करना चाहिए। उसी गुंजाइश का यहां उपयोग हो रहा है। मैं प्रो. फुरकान कमर का विशेषरूप से धन्यवाद देता हूं, क्योंकि उन्होंने मेरा काम बहुत आसान कर दिया है। उन्होंने 'शिक्षा के अधिकार' पर हिन्दुस्तान भर में चल रही बहस का एक खाका पेश कर दिया है। उनकी आखिरी बात मुझे बहुत अच्छी लगी, 'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता/किसी का जमीं तो किसी को आसमाँ नहीं मिलता'। इसीलिए हमें आसमान की ओर बढ़ने की लड़ाई जारी रखनी चाहिए। इसी भावना के साथ मैं अपनी बात आपके सामने रखने कोशिश करूंगा।

सबसे पहले मैं इस ऐतिहासिक दौर को चिह्नित करना चाहूंगा, खासकर शिक्षा के संदर्भ में, जहां आज हम खड़े हैं और राजस्थान विश्वविद्यालय में यह संगोष्ठी हो रही है। यह ऐतिहासिक दौर क्या है ? इस दौर को चिह्नित करने के लिए मैं हाल में अंग्रेजी में छपे अपने लेख की मदद लूंगा जो इस विधेयक के संसद में पारित होने के हफ्तेभर पहले छपा और जिसे ढाई सौ सांसदों को पहुंचाया गया। इसका शीर्षक है, 'शिक्षा नीति और शिक्षा अधिकार कानून : एक ऐतिहासिक धोखा'।

यह वह ऐतिहासिक दौर है जब देश के विभिन्न राज्यों में सरकारी स्कूल बेचे जा रहे हैं या उनके परिसर और जमीन को बेचने की प्रक्रिया आगे बढ़ाई जा रही है। यह वह ऐतिहासिक दौर है जब कॉरपोरेट घरानों और स्वयंसेवी संगठनों को सरकारी स्कूल आउट-सोर्स किए जा रहे हैं। यह वह ऐतिहासिक दौर है जब पंजाब और झारखण्ड में स्कूलों के टेण्डर अखबारों में निकल रहे हैं। यह वह दौर है जब एक मशहूर और शक्तिशाली मोबाइल कम्पनी महीनों तक अपना विज्ञापन टी. वी. के जरिए देशभर में प्रसारित करती है कि एक अध्यापक और अनेक कक्षाएं कैसे चलाई जा सकती हैं। आप सबको याद होगा, एक मोबाइल जो अंग्रेजी माध्यम के एक महंगे स्कूल में रखा हुआ है और जहां एक शिक्षिका बच्चों को पढ़ा रही है। उस मोबाइल का संदेश दूर-दराज के गांवों में जाता है, जहां चिथड़े पहने हुए गरीब-आदिवासी और दलित बच्चे भाग-भागकर मोबाइल के जरिए पढ़ने आते हैं। यह वह ऐतिहासिक दौर है जहां योजना आयोग आधिकारिक तौर पर शिक्षा की नीति क्या हो, इस पर कॉरपोरेट घरानों को बुलाकर सलाह-मशविरा कर रहा है। पिछले साल अप्रैल के महीने में योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया की अध्यक्षता में 18 'महान शिक्षाविद्' आमंत्रित किए गए। वे सब पेप्सी कोला और कोका कोला से लेकर एच.डी.

परिचय : जाने-माने शिक्षाविद्, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 की संचालन समिति, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड एवं राष्ट्रीय स्तर पर बनी विभिन्न शिक्षा समितियों के सदस्य रहे हैं।

प्रकाशन : शिक्षा में बदलाव का सवाल, ग्रन्थशिल्पी प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

संपर्क : ई-8/29, सहकार नगर, भोपाल-462039 मध्य प्रदेश

एफ.सी. तथा माइक्रोसॉफ्ट तक किसी न किसी बड़े कॉरपोरेट घराने के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सी.ई.ओ.) थे। उन्हें शिक्षा नीति बनाने के लिए मशविरा करने बुलाया गया।

यह वह ऐतिहासिक दौर है जब आए दिन बढ़ते क्रम में निजी स्कूलों, निजी कॉलेजों और निजी विश्वविद्यालयों को सहूलियत देने के लिए टैक्स एवं टैक्स कानूनों में छूट बढ़ाई जा रही है और इससे होने वाली राजस्व की हानि का बहाना लगाकर कहा जाता है कि हमारे पास पैसा नहीं है या सरकार के पास शिक्षा व्यवस्था को पुख्ता करने के लिए पैसा नहीं है। यह वह ऐतिहासिक दौर है जब छठे वेतन आयोग में, जिससे राजस्थान विश्वविद्यालय की फैकल्टी या तो लाभान्वित हो चुकी होगी या होने वाली होगी, उन कर्मचारियों के लिए एक-एक लाख रुपए तक फीस देने के लिए स्पेशल बोनस दिया जाएगा जिनके बच्चे निजी स्कूलों, कॉलेजों या निजी विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं। यानी सरकार अपने खजाने से पैसा निकालकर निजीकरण करवाएगी।

यह वह ऐतिहासिक दौर है जिसमें निजी स्कूलों द्वारा मनमाने ढंग से फीस बढ़ाने के खिलाफ दर्जनों राज्यों में अभिभावक संघों ने जमकर आंदोलन, धरने और अनशन किए हैं। इसके बावजूद राज्य सरकारें बिलकुल असहाय हैं तथा कुछ नहीं कर पा रही हैं। मुझे सवेरे पता चला कि राजस्थान भी इसमें शामिल है। यह वह ऐतिहासिक दौर है जब सार्वजनिक-निजी साझेदारी के नाम पर कॉरपोरेट घरानों एवं स्वयंसेवी संगठनों को सरकारी खजाने से निजी संस्थान स्थापित करने एवं मनमाने ढंग से मुनाफा कमाने के लिए पैसा सौंपा जा रहा है। उनके लिए खुली छूट देने के लिए योजना आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, प्रधानमंत्री कार्यालय और केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् द्वारा कानून, नियम और प्रावधान खड़े किए जा रहे हैं। यह वह ऐतिहासिक दौर है जब एक गैराज के ऊपर एक कमरे का बीएड कॉलेज खुलता है और जहां 50 हजार रुपए प्रवेश फीस ली जाती है। इस मनमानी फीस के लिए कोई नियमन नहीं है और जिन पर न तो राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण परिषद् का कानून चलता है और न किसी और का। वे बकायदा मान्यता प्राप्त कॉलेज होते हैं जिनको न केवल राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण परिषद् की मान्यता मिलती है बल्कि विश्वविद्यालयों से भी संबद्धता मिलती है और जहां एक अकेला प्रशासक बीएड कॉलेज चलाता है।

यह वह ऐतिहासिक दौर है जब कर्नाटक सरकार नीति बनाने के लिए कॉरपोरेट घरानों की समिति बनाकर शिक्षाक्रम बनाने का काम सौंपती है। कम्प्यूटर शिक्षण के शिक्षाक्रम बनाने का काम तो कई राज्यों में सौंपा जा चुका है। अब हिन्दुस्तान में पाठ्यचर्या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विश्वविद्यालय एवं राज्यों की राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् नहीं बना रही हैं, अब कम्प्यूटर कम्पनियां आपके बच्चों के लिए बढ़ते क्रम में पाठ्यचर्या बना रही हैं। इस ऐतिहासिक दौर में आज हम यह सभा कर रहे हैं और इसी में हम कानून की बात करेंगे तथा अपनी लड़ाई की बात भी करेंगे।

मैंने छः हफ्ते पहले अपनी बात को पेश करने का तरीका बदला है। मैं बंबई में था और मुझे बताया गया कि करीब 70-80 वामपंथी बुद्धिजीवी जो कि कॉलेज और विश्वविद्यालय शिक्षा से जुड़े हैं, उन्हें इस कानून की वैधता और मंशा पर शक तो है लेकिन वे पूरी तरह आश्वस्त नहीं हैं और वे इस पर बात करना चाहते हैं। मैंने बहुत सोचा कि इसका क्या कारण हो सकता है। मुझे समझ में आया कि शायद वे इसलिए आश्वस्त नहीं हुए हैं कि इस कानून के खिलाफ देश को लामबंद करने की हमारी प्रेरणा के कारणों को नहीं समझ पाए हैं। हमारी प्रेरणा यह नहीं है कि यह कानून गलत है। कानून तो है ही गलत लेकिन प्रेरणा वहां से नहीं आई है। प्रेरणा इस बात से आई है कि हमारे मन में भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि है। केवल स्कूल व्यवस्था के लिए नहीं पूरी शिक्षा व्यवस्था के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसको भारत के आजादी के आंदोलन के दौरान, आजादी के लड़ने वाले लोगों ने विकसित करना शुरू कर दिया था। यह वह दृष्टि है जिसे 1938 में अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी के सम्मेलन में गांधी जी की अध्यक्षता में रखा गया था और स्कूल व्यवस्था के संदर्भ में जाकिर हुसैन समिति ने एक पूरा दस्तावेज पेश किया था तथा गांधी जी ने पूरी उच्च शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा को लेते हुए एक वैकल्पिक दृष्टिकोण पेश किया था। इसका बीजारोपण उसके भी पहले 1937 में वर्धा के मशहूर अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में गांधी जी ने किया। वैकल्पिक दृष्टि की यह प्रेरणा, जिसे आजादी के 60 साल बाद नहीं बल्कि 10 साल के अन्दर पूरी हो जानी चाहिए थी, वह पूरी नहीं हुई। बावजूद इसके, बाद के 50 सालों में बढ़ते क्रम में न सिर्फ उसके खिलाफ गए बल्कि उसे तोड़ा, टुकड़े-टुकड़े किए, उसको विकृत और शिथिल किया। इसी के नतीजे के तौर पर आज हम उस मुकाम पर पहुंच गए हैं कि यह कानून बन गया है। यदि उस वैकल्पिक दृष्टि को मैं आपके सामने नहीं रखता हूं तो हमारी प्रेरणा और प्रेरणा के साथ जुड़ी हुई हिम्मत, जिसके जरिए हम भारतीय राज्य को चुनौती दे रहे हैं, समझ नहीं पाएंगे।

वह वैकल्पिक शिक्षा दृष्टि क्या है ? मैं पूरी शिक्षा व्यवस्था पर यहां तफसील से बात नहीं कर पाऊंगा क्योंकि समय कम है। इसकी तरफ इशारा जरूर करुंगा लेकिन मेरी बात मुख्य रूप से स्कूल व्यवस्था पर केन्द्रित होगी जिसको बिगाड़ने के लिए यह कानून लाया गया है। उस वैकल्पिक दृष्टि का नाम है 'समान स्कूल प्रणाली'।

कुछ साथी कहते हैं यह सही नाम नहीं है, इसे 'सार्वजनिक स्कूल प्रणाली' कहना चाहिए। अभी हम काम चलाने के लिए इसे समान स्कूल प्रणाली कह रहे हैं क्योंकि यह नाम प्रचलित हो चुका है। अंग्रेजी में 'कॉमन स्कूल सिस्टम'। पर यह नाम अधूरा है। इसका पूरा नामकरण हमने 10 साल पहले किया, जब हमें समझ आया कि यह अधूरा नाम है, तब हमने इसे 'पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल प्रणाली' का नाम दिया।

यह दृष्टि क्या है ? यह दृष्टि भारत के संविधान से निकलती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 यह कहता है कि 'भारतीय राज्य के समक्ष हरेक नागरिक के लिए कानून की बराबरी होगी'। अनुच्छेद 15 (1) कहता कि 'राज्य किसी भी नागरिक, चाहे वह किसी भी जाति, वंश, वर्ग, भाषा, इलाके और लिंग का हो; के खिलाफ भेदभाव नहीं करेगा' और अनुच्छेद 16 कहता है कि 'सार्वजनिक रोजगारों में सभी लोगों को बराबरी के अवसर दिए जाएंगे'। ये तीन बुनियादी अनुच्छेद भारतीय संविधान के स्तम्भ माने जा सकते हैं जिसके पीछे बाबा साहब अंबेडकर का प्रमुख योगदान है और इन तीनों अनुच्छेदों के आधार पर जो शिक्षा प्रणाली आज तक सोची गई है, एकमात्र शिक्षा प्रणाली, पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल प्रणाली है जो हरेक बच्चे को अनुच्छेद 14 के तहत कानून के समक्ष बराबरी का अधिकार देती है और 15 (1) के तहत सुनिश्चित करती है कि राज्य किसी भी बच्चे के खिलाफ भेदभाव नहीं करेगा और अनुच्छेद 16 के तहत सार्वजनिक रोजगारों में सभी को बराबरी के अवसर देने का आश्वासन देती है। यह प्रणाली क्या है ?

> **"झूठे मायनों में पड़ोसी स्कूल इस कानून ने दिया है जो कि पड़ोसी स्कूल का मजाक है तथा उस अवधारणा को हमेशा के लिए खत्म कर देता है। क्या है... पड़ोसी स्कूल का मतलब यह नहीं है कि जो आपके पड़ोस में है और जैसा कि यह कानून कहता है। पड़ोसी स्कूल का मतलब है- हर स्कूल एक पड़ोस रखेगा।..."**

दो साल पहले भोपाल में, जहां से मैं आया हूं, एक शिक्षक आंदोलन हुआ। वास्तव में उसको शिक्षक आंदोलन नहीं कहना चाहिए क्योंकि शिक्षक तो बचे ही नहीं हैं। अब ज्यादातर शिक्षक 'पैरा-शिक्षक' हो गए हैं। उसकी कुछ शुरुआत मध्य प्रदेश से और कुछ राजस्थान के शिक्षाकर्मी से हुई। हालांकि शुरुआत दोनों जगह भिन्न है। मध्य प्रदेश में उसकी शुरुआत औपचारिकेत्तर या नॉन फॉर्मल एज्युकेशन के तौर पर हुई और इसमें 'शिक्षकों' की नियुक्ति 1986 की शिक्षा नीति में दिए गए 'इंस्ट्रेक्टर' बतौर हुई और राजस्थान में शिक्षाकर्मी के नाम पर हुई। अब तो यह देश की नीति का हिस्सा बन चुका है और यह कानून उसे वैधानिकता प्रदान कर रहा है। दो साल पहले भोपाल में गुरुजीओं का आंदोलन हुआ। ये वे गुरुजी नहीं हैं जो हमारे बचपन में होते थे और जिनके पाव हम गुरुजी कहकर छूते थे। यह मध्य प्रदेश में शिक्षक की एक खास श्रेणी है। मध्य प्रदेश में शिक्षा गारंटी केन्द्र की योजना विश्व बैंक के आदेश पर नवउदारवादी दौर के बिलकुल बीच में, 1997 में शुरू हुई और उस योजना में अर्हताविहीन, अप्रशिक्षित, अल्पकालिक और अल्प भुगतान पर व्यक्ति (उन्हें शिक्षक कहना उचित नहीं है) नियुक्त किए गए। उनको गुरुजी नाम दिया गया। यह कहकर कि आदिवासी बच्चों को अब शिक्षा मिलेगी, वैसे 30 हजार केन्द्र खोले गए और उनमें 30 हजार गुरुजी नियुक्त किए गए जिन्हें कभी भी सही वेतन, मान और इज्जत नहीं मिली; और जिसे यह कानून वैधानिकता प्रदान कर रहा है। ये गुरुजी आए दिन हड़ताल पर रहते थे। दो साल पहले, पता नहीं वे कौनसे दौर की हड़ताल पर थे। आजकल हरेक राज्य में हड़ताल और जन सभाओं का स्थान तय हो गया है। ये स्थान मुख्य सड़कों से हटकर होते हैं और वहीं ऐसी गोष्ठियों की इजाजत मिलती है। ऐसी ही जगह उनकी हड़ताल चल रही थी। छः दिन बीत गए। अखबारों में या तो खबर छपती नहीं थी और छपती भी थी तो तीसरे-चौथे पेज पर दो-चार लाइन की। उनके नेता परेशान हो गए। उन्होंने कहा कि ऐसे तो कोई हमारी बात सुनेगा नहीं। उन्होंने सातवें दिन अपनी हड़ताल उस तयशुदा जगह से हटाकर मुख्य सड़क पर शुरू कर दी। वह मुख्य सड़क भोपाल शहर के एक बड़े हाई प्रोफाइल बाजार की ओर जाती थी जहां पर वहां का उच्च मध्यम वर्ग, आईएएस, आईपीएस अधिकारी तथा कॉरपोरेट एक्जिक्यूटिव जाते हैं। उस रास्ते में तीस हजार गुरुजी जाकर बैठ गए। अगले दिन सवेरे हर अखबार के मुख्य पेज पर यह सबसे बड़ी खबर थी। इसलिए नहीं कि तीस हजार शिक्षा गारन्टी केन्द्र बंद थे और वहां पढ़ने वाले शायद एक लाख आदिवासी बच्चे पढ़ नहीं रहे थे। इसकी किसको चिन्ता थी ! क्योंकि उन शिक्षा गारन्टी केन्द्रों में किसी भी आईएएस, आईपीएस, विधायक और किसी भी कॉरपोरेट एक्जिक्यूटिव के बच्चे नहीं पढ़ते थे। उनको चिन्ता यह थी कि बाजार में जाने का रास्ता बन्द हो गया है। इसलिए यह खबर मुख्य पेज पर आई थी। जब यह आन्दोलन चल रहा था तो नियमित शिक्षक, जो अभी भी बचे हुए हैं और सेवानिवृत्त नहीं हुए हैं, वे भी इस आंदोलन में नहीं जुड़े।

मध्य प्रदेश में शिक्षकों के छः केडर हो गए हैं। यहां भी इतने ही होंगे। उनमें से पांच केडर उनके समर्थन में नहीं थे। अंत में हड़ताल वापस लेनी पड़ी क्योंकि आम जनता और शिक्षकों का समर्थन बहुत सीमित था। उच्च शिक्षा के शिक्षक तो कभी इन स्कूली

शिक्षकों पर ध्यान ही नहीं देते और जब वे छठे वेतन आयोग के लिए हड़ताल पर जाते हैं तो स्कूल के शिक्षक उन पर ध्यान देते हैं। पूरे शिक्षक समुदाय को, पूरे 50 लाख शिक्षकों को, अब टुकड़ों में बांट दिया गया है और कमजोर कर दिया गया है। यह सोची समझी राजनीति है जिसकी अनुशंसा विश्व बैंक ने 1990 में भारत सरकार से की थी, और इतिहास गवाह है, अब उसका पूरी तरह से पालन हो रहा है। शिक्षक समुदाय एक होकर कभी लामबंद नहीं हुआ, चुप रहा और इस नीति को उसने कभी नहीं समझा। यह सब क्यों हुआ ? क्योंकि जिस समय उनकी ताकत को तोड़ा जा रहा था, केडरों में बांटा जा रहा था, उनके हित अलग-अलग किए जा रहे थे, अलग-अलग मांग पत्रों पर उनकी नियुक्ति की जा रही थी; उस समय शिक्षक समुदाय एक नहीं हुआ।

यह भारत की कहानी है लेकिन मैंने इसका ठीक उल्टा नजरिया 1996 में कनाडा में देखा। वहां पर वैश्वीकरण की नीतियों के खिलाफ एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ और वहां मुझे भी बुलाया गया क्योंकि मैं शिक्षा में वैश्वीकरण की नीति के खिलाफ लिखता रहा था। टोरेंटो एयरपोर्ट पर उतरते ही मैंने वहां पर लगे हुए अखबार देखे। उन सब अखबारों की मुख्य पंक्तियां थीं कि आने वाले कल शिक्षकों और अभिभावकों का संयुक्त मोर्चा निकलेगा और उस पर टोरेंटो के विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के शिक्षक संगठनों द्वारा आम सभा आयोजित की जाएगी। शिक्षकों के आंदोलनों के बारे में मैं जानता हूं, अभिभावकों के परिप्रेक्ष्य के बारे में भी जानता था लेकिन शिक्षकों एवं अभिभावकों का संयुक्त मोर्चा, संयुक्त रैली मेरे लिए एक नई बात थी। शायद आपके लिए भी होगी। मेरे प्रदेश, मध्य प्रदेश में तो ऐसा कभी नहीं हुआ। मैं उम्मीद कर रहा हूं कि एक दिन ऐसा होगा और हम उसकी लड़ाई लड़ रहे हैं। राजस्थान में ऐसा होगा या नहीं, आप तय कीजिए। अगले दिन मैंने देखा कि एक पंक्ति में शिक्षक और शिक्षिकाएं तथा दूसरी पंक्ति में मां-बाप हाथ पकड़कर मीलों लम्बी रैली में चल रहे थे और वह टोरेंटो विश्वविद्यालय के प्रांगण में समाप्त हुई, जहां वहां के शिक्षक संगठन ने उनका स्वागत किया और सार्वजनिक सभा हुई। यह पूरी एकता का उदाहरण है। ऐसा मैंने हिन्दुस्तान में कभी नहीं देखा। मैंने पूछा यह क्या मामला है ? मुझे बताया गया कि प्रदेश की सरकार ने नवउदारवादी नीतियों को कनाडा में लागू करना शुरू कर दिया है। क्योंकि पूरे कनाडा में सच्चे मायने में सरकार द्वारा संचालित एक सार्वजनिक स्कूल प्रणाली और ऊंची गुणवत्ता की प्रणाली कायम है। इस वजह से किसी भी मां-बाप को अपने बच्चे को निजी स्कूल में दाखिल करने की जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए वहां निजी स्कूलों की संख्या लगभग नगण्य है। मैं उस पूंजीवादी मुल्क की बात कर रहा हूं। ठीक यही कहानी अमेरिका की है जो उसके दक्षिण में है। ठीक यही कहानी जी-8 के सदस्य देशों की है जो दुनिया के सबसे ताकतवर देश हैं और अकूत संपदा के मालिक हैं। उन्होंने कहा, 'यह सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। प्रदेश सरकार इसको नष्ट करने के लिए अब इसकी वित्तीय मदद घटा रही है और हमारी स्कूल प्रणाली को गैर-लोकतांत्रिक बना रही है। इसलिए सब लोग एक हो गए हैं'। मैंने कहा, 'यह तो मैं समझ गया हूं कि नवउदारवादी नीति का मामला है, पर ये सब एक कैसे हो गए'। उन्होंने कहा, 'यहां सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है और सबके बच्चे वहीं पढ़ते हैं- चाहे वह सांसद हो या वह प्रदेश विधानसभा का सदस्य हो या वह कॉरपोरेट घराने का मालिक हो और चाहे वह मजदूर हो या किसान हो। उन सभी के बच्चे इसी स्कूल प्रणाली में पढ़ते हैं। इसलिए सबका निहित स्वार्थ एक है'। अब इसे लोग कहते हैं कि आप चांद की उम्मीद कर रहे हैं या यह पूर्णतावाद या आदर्श है। आदर्श तो यह है पर चांद नहीं है और न ही यह पूर्णतावाद है। क्योंकि कोई भी चिन्तनशील व्यक्ति इन जी-8 देशों की सार्वजनिक स्कूल प्रणाली में ढेरों खामियां ढूंढ़ सकता है। और यह भी तय है कि हमें उनकी फूहड़ कार्बन कॉपी भारत में नहीं लानी है। उनमें खामियां हैं, ढेरों खामियां हैं। उन खामियों के बावजूद वह आज हमारे यहां तेजी से निजीकृत और बाजारीकृत होती व्यवस्था से कहीं ज्यादा बेहतर और अधिक न्यायशील है। कनाडा, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और जापान में भी हरेक स्कूल सच्चे मायनों में एक पड़ोसी स्कूल है। 4 अगस्त 2009 तक यह कानून नहीं बना था। संसद में पारित होने के बाद मुझे हर बार यह कहना पड़ता है कि 'सच्चे मायने में' पड़ोसी स्कूल है। क्योंकि झूठे मायनों में पड़ोसी स्कूल इस कानून ने दिया है जो कि पड़ोसी स्कूल का मजाक है तथा उस अवधारणा को हमेशा के लिए खत्म कर देता है। क्या है यह पड़ोसी स्कूल की अवधारणा ?

पड़ोसी स्कूल का मतलब यह नहीं है कि जो आपके पड़ोस में है और जैसा कि यह कानून कहता है। पड़ोसी स्कूल का मतलब है- हर स्कूल एक पड़ोस रखेगा। हर स्कूल का एक पूर्व-निर्धारित पड़ोस होगा। चाहे वह कोई भी स्कूल हो- चाहे निजी स्कूल हो या सरकारी। उसका एक पूर्व-निर्धारित पड़ोस होगा। कानून के द्वारा एक दायरा निश्चित होगा और पूर्व-निर्धारित दायरे में जो भी परिवार रहते हैं, चाहे अमीर हों या गरीब। चाहे सांसद हों या विधायक, चाहे कॉरपोरेट घराने के मालिक हों या मजदूर, चाहे किसान हों या क्लर्क; सबके बच्चे उसी स्कूल में न केवल पढ़ने के हकदार होंगे बल्कि स्कूल के लिए उनको बिना किसी छंटाई जांच के, बिना कोई सवाल पूछे भर्ती करना, पढ़ाना और मुफ्त शिक्षा देना लाजमी होगा। यह मतलब है पड़ोसी स्कूल का। आप इस कानून को उठाइए और पढ़िए, क्या पड़ोसी स्कूल की यह स्थापित सार्वभौमिक परिभाषा जिसे ऐतिहासिक

रूप से हमेशा हिन्दुस्तान में माना गया और साथ ही जिसे 1986 की संसद द्वारा पारित शिक्षा नीति में भी माना गया है, क्या इस कानून में वही परिभाषा है ? जब राज्य सभा में भारतीय मार्क्सवादी पार्टी के डी. राजा ने यह सवाल पूछा कि, 'क्या कारण है कि आप पड़ोसी स्कूल नहीं दे रहे हैं' ? तब कपिल सिब्बल साहब ने खड़े होकर कहा, 'दिया तो है। आप पढ़िए अमुक धारा को, उसमें दिया तो है पड़ोसी स्कूल'। हां, इस कानून में नाम है पड़ोसी स्कूल लेकिन विचार ठीक इसके उल्टा है। यह नवउदारवादी दौर की एक बड़ी खासियत है। यदि आप समझना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान ही नहीं पूरी दुनिया में क्या हो रहा है तो आप इसकी भाषा पर ध्यान दीजिए। नवउदारवादी दौर में भाषा का बहुत सोचा-समझा और चालाकीपूर्ण उपयोग होता है। अगर आप नॉम चॉम्स्की को पढ़ें, जो दुनिया के महान भाषाविद् और राजनैतिक कार्यकर्ता हैं और अमेरिकी पूंजीवाद के घोर विरोधी व्यक्ति हैं; वे कहते हैं कि, 'भाषा में जो लिखा जाता है वह यों ही नहीं होता, वह आपके विचारों का प्रतिबिम्ब होता है और जो भाषा आप लिखते हैं वह अन्ततः आपके विचारों को भी प्रभावित करती है। उनके बीच में एक द्वंद्वात्मक रिश्ता होता है'। दुनिया में पड़ोसी स्कूल की स्थापित समझदारी तथा अवधारणा का इस कानून में दुरुपयोग करते हैं तब इस चालाक भाषा का उपयोग करते हैं और संसद में उठे सवाल के जबाव में झूठ बोलते हैं। तब हमें सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि आपकी आखिर मंशा क्या है ?

> **"आप इस कानून को उठाइए और पढ़िए, क्या पड़ोसी स्कूल की यह स्थापित सार्वभौमिक परिभाषा जिसे ऐतिहासिक रूप से हमेशा हिन्दुस्तान में माना गया और साथ ही जिसे 1986 की संसद द्वारा पारित शिक्षा नीति में भी माना गया है, क्या इस कानून में वही परिभाषा है ?"**

इसका क्रियान्वयन कैसे होगा, सवाल इस पर नहीं है, सवाल आपकी मंशा पर है। क्रियान्वयन तो बहुत बाद में होगा। चूंकि कपिल सिब्बल कोई अकेले व्यक्ति नहीं हैं। वे एक मंत्रिमंडल के सदस्य हैं, उसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और जो कुछ कर रहे हैं वह प्रधानमंत्री, कांग्रेस पार्टी और उनके नेताओं की अनुमति से कर रहे हैं। संसद इस कानून को स्वीकृति देती है तो पूरी संसद और हरेक राजनीतिक दल की स्वीकृति से कर रहे हैं। क्योंकि इस कानून के खिलाफ एक भी असहमति का वोट नहीं पड़ा। उन लोगों ने भी नहीं डाला जिन्होंने इसके खिलाफ वहां पर भाषण पढ़े, उन्होंने भी इसके पक्ष में वोट दिए। यानी सभी राजनैतिक दल इससे सहमत हैं। पूरी संसद और राजनैतिक दल जब एक स्वर में बोलते हैं तो सबकी मंशा पर सवाल उठता है। तो फिर सवाल कौन उठाएगा ? ऐसे सवाल न तो नौकरशाह उठाने वाले हैं क्योंकि वे तो नौकर हैं। न ही राजनीतिक दल के नेता उठाने वाले हैं क्योंकि वे स्वीकृति दे चुके हैं। न कॉरपोरेट घराने उठाने वाले हैं क्योंकि उन्हीं की मदद से यह भारतीय राज्य खड़ा हुआ है। न ही विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष उठाने वाला है क्योंकि उन्हीं के कहने और उनसे आज्ञा लेकर ही तो यह सब किया जा रहा है। इन सबका पूरा ब्यौरा उदाहरणों सहित मेरे द्वारा लिखे गए सभी लेखों में है। ये आवाज जनता से ही उठेगी और उसी के लिए हम देशभर में घूम रहे हैं।

एक बार फिर मैं समान स्कूल प्रणाली की दृष्टि पर लौटता हूं। समान स्कूल इसलिए एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है क्योंकि इसके बगैर कोई और वैकल्पिक अवधारणा नहीं हो सकती जिससे हम देश के सभी बच्चों को समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा देना सुनिश्चित कर सकें। इसके लिए कम से कम मैं, इसके अलावा किसी और प्रणाली को नहीं जानता। यदि आप जानते हैं तो जरूर बताएं कि वह कौनसी वैकल्पिक अवधारणा है ? यह सवाल मैं देशभर में पूछता हूं कि जो भारत के सब बच्चों को, और सबका मतलब सब हैं, सब का मतलब 6 से 14 साल के बच्चे ही नहीं हैं जैसा कि यह कानून कहता है; और जो गलत बात है। यदि यह कानून उनकी भी बात कर रहा है तो उनकी संख्या भी 19 करोड़ है। मैं 19 करोड़ बच्चों की बात कर रहा हूं। जब मैं बच्चे बोलता हूं तो जयपुर, दिल्ली, भोपाल, चैन्नई, बम्बई, बैंगलोर और कलकत्ता की बात नहीं कर रहा हूं। उस समय मैं मेघालय के दूर-दराज के खासी और जयंतिया गांव की भी बात कर रहा हूं। मैं नागालैण्ड के सेमा जाति के गांवों की भी बात कर रहा हूं। मैं मुंबई की भी बात कर रहा हूं। सबका मतलब सब है। मैं विश्व बैंक के 'सभी के लिए शिक्षा' की बात नहीं कर रहा हूं जिसका अर्थ इससे बिलकुल उल्टा होता है यानी 'किसी के लिए भी शिक्षा नहीं'। उसमें तो यह बात होती थी कि तुम्हें तो अच्छे स्कूल और बाकी को रद्दी स्कूल। और न ही मैं लोकजुम्बिश वाले 'सभी के लिए शिक्षा' की बात कर रहा हूं जिसने यहां औपचारिकेत्तर शिक्षा को इतनी बड़ी वैधता प्रदान कर दी। यह सब गैर-संवैधानिक और जनविरोधी हैं। अब वे इतिहास का हिस्सा हैं और इतिहास से सीखना चाहिए कि वह गलती हम दोबारा न दोहराएं। मैं बात कर रहा हूं सबको समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा की। लेकिन सवाल यह है कि समतामूलक शिक्षा से हमारा आशय क्या है ?

समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा का मतलब एकरूप शिक्षा नहीं है। मैं जोर देकर इसे रेखांकित कर देना चाहता हूं। क्योंकि जैसे ही समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा बोलते हैं वैसे ही लोग इससे एकरूप शिक्षा का अर्थ निकाल लेते हैं। एकरूप शिक्षा हमारा एजेण्डा नहीं

है बल्कि हमारा एजेण्डा विविधतापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था खड़े करने का है। विविधतापूर्ण का मतलब भी विषमतापूर्ण शिक्षा नहीं है। इन दोनों अवधारणाओं क बीच में जो महत्त्वपूर्ण खाई और अन्तर है उसे समझना बहुत जरूरी है। किसी ने कहा है कि, 'एक सही सिद्धान्त अपने आप में क्रियान्वयन है और यदि आप एक गलत सिद्धान्त का क्रियान्वयन करेंगे तो जिन्दगी भर रोएंगे'। हम विविधतापूर्ण शिक्षा को विकसित करने की बात कर रहे हैं। फिर समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा का क्या मतलब है ? इसका यह मतलब है कि न्यूनतम गुणवत्ता की शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए जो भी आवश्यकताएं हैं वे सब समान रूप से सभी बच्चों को सभी स्कूलों में मुहैया करा दी जाएंगी। जो न्यूनतम मापदण्ड हैं वे सब जगह एक जैसे होंगे। उसके बाद उनका और बेहतरीकरण हो सकता है लेकिन न्यूनतम सब जगह एक से होंगे। उतने के लिए ही तो हम लड़ाई लड़ रहे हैं। न्यूनतम मापदण्डों से क्या मतलब है ?

न्यूनतम मापदण्ड ढांचागत भी हो सकते हैं, जैसे- कितने कमरे होंगे, उनमें कितने शिक्षक होंगे, उनमें प्रयोगशालाएं होंगी, पुस्तकालय होंगे, खेल के मैदान होंगे और खेलने के लिए सामग्री होगी। ये सब ढांचागत न्यूनतम मापदण्डों का हिस्सा हैं। शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात 1:30 का होना चाहिए। अर्थात् 30 बच्चों पर एक शिक्षक होना चाहिए। भारत की सन् 1986 की शिक्षा नीति कहती है कि कोई भी स्कूल ऐसा नहीं होगा जहां पर 40-50 या 100 बच्चों पर एक शिक्षक होगा। इसका यह भी मतलब है यदि राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण परिषद् के मापदण्डों में एक शिक्षक की परिभाषा यह की जाती है कि शिक्षक वह है जिसने 12 वीं कक्षा के बाद दो साल का डिप्लोमा आरंभिक शिक्षा में या स्नातक के बाद बीएड किया हो, तब वह कक्षा 8 अथवा माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ा सकता है अथवा एमएड करने के बाद वह 11-12 वीं कक्षा पढ़ा सकता है। ये न्यूनतम मापदण्ड हैं। यदि वह नर्सरी में पढ़ाना चाहता है तो उनके पास एनडीटी के प्रशिक्षण का डिप्लोमा होना चाहिए। इन न्यूनतम मापदण्डों को पूरा करने वाले ही स्कूल शिक्षक होंगे। ऐसा नहीं होगा कि आदिवासियों के शिक्षा गारन्टी केन्द्रों में कोई भी चलेगा, 8 वीं फेल भी चलेगा और यदि उस गांव में कोई 8 वीं फेल भी नहीं मिलता तो छठी फेल भी चलेगा। और ऐसा चल रहा है। समतामूलक मापदण्डों में यह नहीं चल सकता। यदि समतामूलक मापदण्डों की यह मांग है कि हरेक स्कूल में एक बढ़िया पुस्तकालय होना चाहिए और छठी कक्षा के बाद जब विज्ञान विषय शुरू हो तो वहां पर प्रयोगशाला होनी चाहिए तो वहां प्रयोगशाला होनी चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता कि जयपुर में तो पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं मिलेंगी लेकिन टोंक या बांसवाडा के गांवों में नहीं मिलेंगी। इसकी इजाजत भारत का संविधान नहीं देता।

ढांचागत मापदण्डों से आगे बढ़ें तो, यदि विज्ञान सीखने का सर्वोत्तम तरीका खास आयु समूह में कक्षा से 6 से 8 तक और कुछ हद तक 9 वीं, 10 वीं और 11 वीं में; खुद प्रयोग करके सीखना लाजमी है तो इसकी व्यवस्था सब स्कूलों में होगी। इसके लिए अगर शिक्षकों को प्रशिक्षित या पुनर्प्रशिक्षित करना है तो सभी शिक्षकों के पुनः प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी ताकि सब बच्चे अपने हाथों से प्रयोग करके, खुद आंकड़े इकट्ठे करके, खुद विश्लेषण करके विज्ञान को वैज्ञानिक ढंग से सीखें; न कि रटें जो कि गैर-वैज्ञानिक है। यह सब जगह होगा। इतिहास का बोध सबके लिए इतिहास का बोध होगा। यानी मेघालय के खासी इलाके में जहां पर उन्होंने 1834 में ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ बगावत की, इसके बारे में जानना उनका मूलभूत अधिकार है। 1857 की लड़ाई तो बाद में हुई है। 1857 के बारे में भी जानेंगे लेकिन खासी जनता ने यह बगावत 1834 में कर दी थी और लगभग ठीक उसी समय झारखण्ड के इलाकों में भी आदिवासियों ने बगावत कर दी थी, यह जानना उनका मूलभूत अधिकार है। यह इतिहास बोध का हिस्सा है। कोई यह नहीं कह सकता कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या बन गई है और इतिहास में तो 1857 की लड़ाई से बात शुरू होगी। बाकी विषयों में भी इसी तरह के मापदण्ड लागू होंगे। समयाभाव में सबकी व्याख्या यहां नहीं हो सकती। ये सभी मौलिक अधिकार के हिस्से हैं।

भाषा का सवाल एक प्रमुख सवाल है, जिस पर हिन्दुस्तान को बांटा गया है। मैं प्रान्तों को बांटने की बात नहीं कह रहा हूं। हिन्दुस्तान की शिक्षा व्यवस्था को बांटा गया है और जब शिक्षा व्यवस्था बांटी जाएगी तो समाज में पहले से बरकरार बंटवारा और पुख्ता होगा। शिक्षा व्यवस्था का काम, जैसा कि कोठारी आयोग ने 1966 की अपनी रिपोर्ट में कहा था, 'समाज के विभिन्न तबकों को जोड़ना है, उनमें सद्भाव लाना है और उनमें एकजुटता पैदा करनी है'। हमारी शिक्षा व्यवस्था इसके ठीक उल्टे रास्ते पर चल चुकी है और यह कानून उसको और पुख्ता कर रहा है। देश में स्कूल स्तर पर जो बहुपरती शिक्षा व्यवस्था खड़ी हो गई है उसे इस कानून के जरिए बरकरार रखा जाएगा यानी समाज को और ज्यादा तोड़ने और टूटे हुए समाज को पुख्ता रूप में टूटा रखने के लिए यह कानून काम करेगा। लेकिन इसकी इजाजत समान स्कूल प्रणाली नहीं देती है और न ही भारत का संविधान देता है।

समान स्कूल प्रणाली की व्यवस्था यह भी कहती है कि सब बच्चों को मुफ्त शिक्षा मिलेगी। यह संविधान के अनुच्छेद 45 में लिखा हुआ था जिसे इस कानून में अभी बिगाड़ दिया गया है। हिन्दी में इसका तर्जुमा हमेशा 'निःशुल्क' किया गया। जैसा कि इस कानून का भी नाम 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा' है। यह तर्जुमा जानबूझ

कर निःशुल्क किया जाता है, उसको मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा नहीं कहा जाता। जब दिसम्बर-जनवरी के महीने में संसदीय समिति इस पर विचार कर रही थी तो हमने उस समिति से भोपाल के शिक्षा अधिकार मंच की ओर से बकायदा लिखित अपील की थी। यह दिखाता है कि हम इस व्यवस्था में बार-बार हस्तक्षेप करते हैं, बार-बार उसके पास जाते हैं और इससे अलग नहीं रहते क्योंकि हमें मालूम है कि अन्ततः इसी व्यवस्था को बदलकर न्याय मिलेगा। हमने कहा कि आप इसका तर्जुमा गलत कर रहे हैं, यह 'निःशुल्क' नहीं 'मुफ्त' होना चाहिए। हमने कारण दिया कि 100 साल से निःशुल्क का मतलब केवल ट्यूशन फीस माफ करना होता है। इस देश के कई राज्यों में निःशुल्क शिक्षा देने का दावा किया जाता है क्योंकि वहां ट्यूशन फीस नहीं ली जाती। लेकिन सही मायने में वह निःशुल्क नहीं है। हमसे बकायदा अलग-अलग मदों में पैसे लिए जाते हैं। मध्य प्रदेश में विश्व बैंक की तर्ज पर सन् 2000 में एक जन शिक्षा अधिनियम बना। वह कहता है कि निःशुल्क शिक्षा दी जाएगी और वही यह भी कहता है कि हम स्काउटिंग, रेडक्रॉस और विकास की फीस भी लेंगे। पाठ्यचर्या इतर गतिविधियों की फीस भी लेंगे। इस तरह अंततः हर तीसरे महीने अभिभावकों, गरीब आदिवासी बच्चों से 300-400 रुपए ऐंठ लिए जाते हैं। फिर भी कहा जाता है कि हम निःशुल्क शिक्षा दे रहे हैं। इसलिए हम निःशुल्क की बात नहीं कर रहे हैं, हम मुफ्त की बात कर रहे हैं। मुफ्त का मतलब कुछ और नहीं सिवाय मुफ्त के।

> **"समान स्कूल प्रणाली की व्यवस्था यह भी कहती है कि सब बच्चों को मुफ्त शिक्षा मिलेगी। यह संविधान के अनुच्छेद 45 में लिखा हुआ था जिसे इस कानून में अभी बिगाड़ दिया गया है। हिन्दी में इसका तर्जुमा हमेशा 'निःशुल्क' किया गया। जैसा कि इस कानून का भी नाम 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा' है। यह तर्जुमा जानबूझ कर निःशुल्क किया जाता है, उसको मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा नहीं कहा जाता।"**

मुफ्त की यह अवधारणा मैंने पूरे तरीके से पिछले साल तब समझी जब मुझे अमेरिका के दक्षिण कैलिफोर्निया की सरकारी स्कूल व्यवस्था का अध्ययन करने का मौका मिला। वहां केवल सरकारी स्कूल हैं, निजी स्कूल नहीं हैं। वहां मैं एक 11 वीं कक्षा में पहुंचा। वहां जीव विज्ञान का एक प्रयोग चल रहा था। मैंने देखा कि शिक्षक ने सब बच्चों को अलग-अलग जगहों पर बिठाकर विभिन्न सब्जियों व फलों के रस दिए हुए थे। बच्चों को कहा गया था कि इनकी अम्लिता या क्षारियता का पीएस मालूम करो। उनको एक लिटमस पेपर दिया गया था। जिसका रंग अलग-अलग पीएस पर अलग-अलग हो जाता था। उनको कहा गया था कि जब आप यह लिटमस पेपर डालेंगे तो उनका जो रंग होगा उसे रस के सामने रंगीन पेंसिल से दिखा दीजिए कि कौनसा रंग है। यह प्रयोग वही है जिसे होशंगाबाद शिक्षण कार्यक्रम, जो सन् 1972 में शुरू हुआ और जिस सन् 2002 में मध्य प्रदेश सरकार ने बंद कर दिया, में तीस साल तक एक हजार स्कूलों के एक लाख बच्चों ने अपने आप किया था। इसके लिए अमेरिका का उदाहरण देने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने शिक्षक से पूछा कि, 'आपने जरूर कल-परसों यह बता दिया होगा कि आज यह होने वाला है क्योंकि सबके सामने रंगीन पेंसिल और मोम रंग का सेट है'। वे बोले, 'क्या बात कर रहे हैं आप! आप तो हमारे यहां नौ दिन से घूम रहे हैं। आप अभी तक यह भी नहीं समझे कि हमारे यहां मुफ्त शिक्षा होती है'। मैंने कहा, 'जी, यह तो मुझे मालूम है कि आपके यहां मुफ्त शिक्षा होती है'। वे बोले, 'तो इसका क्या मतलब है, क्यों लाएंगे बच्चे अपने घर से मोम रंग। मोम रंग देना स्कूल की जिम्मेदारी है'। मुफ्त का यह मतलब है। वहां यह अवधारणा है कि बच्चा जब घर से निकलता है तब से लेकर स्कूल पहुंचने तक, स्कूल के दौरान और स्कूल से घर लौटने तक और जब वह घर में भी है; उसकी शिक्षा पर उसका परिवार एक नया पैसा किसी भी रूप में खर्च नहीं करेगा। यदि बस की जरूरत है तो बस का खर्च भी सरकार देगी या स्कूल देगा। अगर ज्यॉमेट्रिकल बॉक्स चाहिए तो वह भी स्कूल देगा। एनसाइक्लोपीडिया, कम्प्यूटर या सीडी चाहिए तो वह देना भी स्कूल की जिम्मेदारी है और वहां यह सब दिया जाता है। यह मुफ्त शिक्षा का मतलब होता है। हम इस मुफ्त शिक्षा की बात कर रहे हैं। हम इस कानून वाली मुफ्त शिक्षा की बात समान स्कूल प्रणाली में नहीं कर रहे हैं, इस कानून को ध्यान से पढ़िए और मुझे वह वाक्य दिखा दीजिए जहां लिखा हुआ है कि सब बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाएगी। मैंने तो बहुत ढूंढ़ लिया, आप ढूंढ़ लीजिए। उसमें कहीं नहीं लिखा है कि हम मुफ्त शिक्षा देंगे। फिर इस कानून का नाम कैसे हो गया निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा ?

यह एक चालबाजी है, धोखा दिया गया है और जनता धोखे में आ गई है। देश के प्रबुद्धजन, बुद्धिजीवी और शिक्षाविद् भी धोखे में आ गए हैं। सभी कह रहे हैं कि हमें शिक्षा का अधिकार मिल गया है। आए दिन वे यह कहते हैं कि 60 साल के इंतजार के बाद मुफ्त शिक्षा का अधिकार तो मिला। इसके समर्थक कहते हैं कि 6 साल से कम और 14 से 18 साल के बच्चों को यह अधिकार नहीं दिया लेकिन 6 से 14 साल के कम से कम 19 करोड़ बच्चों को तो यह अधिकार मिल गया है। मैं कहता हूं कि इस कानून में मुझे यह दिखा दीजिए जहां यह लिखा हो कि किसी भी बच्चे से ऐसा कोई शुल्क नहीं लिया जाएगा जो उसे आठ साल की आरंभिक शिक्षा पूरी करने से रोकता हो। सवाल यह है कि यह कौन तय करेगा कि वह

शुल्क कौनसा है जो बच्चे को शिक्षा पूरी करने से रोकता है ? क्या वे अधिकृत अधिकारी होंगे ? जिनको इस कानून में 'प्रिस्क्राइब अथॉरिटी' बोला गया है ? उनको अधिकृत किया जाएगा ? क्या अपने-अपने इलाकों, ब्लॉकों अथवा जिलों में यह तय करने के लिए अधिकारी होंगे ? वे किस वर्ग से होंगे ? वे सब मध्य वर्ग के होंगे। वे सब छठा वेतन आयोग पा रहे सरकारी कर्मचारी होंगे। क्या वे दलित, भूमिहीन आदिवासी, गरीब कारीगर तथा मुस्लिम परिवारों से आने वाले बच्चों की समस्या को समझ पाएंगे कि बच्चा किस शुल्क से प्रभावित होगा और किस शुल्क से नहीं होगा ? मैंने अभी ज्यॉमेट्रीकल बॉक्स का जिक्र किया। कक्षा 6 में ज्यामिती शुरू होती है और इसके लिए ज्यॉमेट्रीकल बॉक्स की जरूरत होती है। भोपाल के बाजार में उसकी कीमत 60 से 70 रुपए के बीच में है। यह किस बच्चे के लिए इतना बोझ बन जाएगा कि उसे या तो स्कूली शिक्षा छोड़नी पड़ेगी या रोज डांट खानी पड़ेगी और कक्षा में हीन भावना से गर्दन झुका लेनी पड़ेगी कि तुम अभी तक ज्यॉमेट्रीकल बॉक्स नहीं लाए और अक्टूबर का महीना हो गया। चाहे तब तक सरकार के द्वारा दी जाने वाली पाठ्यपुस्तकें नहीं बंटी होंगी। लेकिन वह बच्चा ज्यॉमेट्रीकल बॉक्स नहीं लाया इसलिए एक वृत्त या त्रिकोण नहीं बना पा रहा है। इसलिए रोज डांट खाएगा क्योंकि ज्यॉमेट्री सीखने के मौलिक अधिकार से वह वंचित किया जा रहा है। वह अधिकार से वंचित हो नहीं रहा है, उसे किया जा रहा है कि उसे मु फ्त में ज्यॉमेट्रीकल बॉक्स नहीं दिया जा रहा है। इसका प्रावधान इस कानून में नहीं है और न ही होने वाला है क्योंकि छठा वेतन आयोग पाने वाली 'प्रिस्क्राइब अथॉरिटी' के दिमाग में यह दर्द हो ही नहीं सकता। वह यह सोच ही नहीं सकता कि एक दलित बच्चा 60 रुपए का खर्च क्यों नहीं कर पा रहा है। यह असंभव है क्योंकि आज ही नहीं देश का पांच हजार साल पुराना इतिहास यह बता रहा है। दलितों का उत्पीडन, आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल किया जाना, उनके संसाधनों से वंचित किए जाने का पांच हजार साल का इतिहास बताता है कि भारत का ऊपर बैठा हुआ वर्ग, सवर्ण वर्ग और ताकतवर वर्ग कभी इस दर्द को महसूस नहीं कर सकता। एक और बात कही गई है जो बहुत कम लोगों ने और शायद ही किसी ने देखी होगी। उसमें लिखा है कौन-कौन से बच्चों, किस-किस श्रेणी के बच्चों को मुफ्त शिक्षा का अधिकार नहीं मिलेगा। यह भी लिखा है कि जो बच्चे निजी स्कूलों में जाएंगे उन्हें किताब नहीं मिलेंगी ? क्यों नहीं मिलेंगी ? यह देखने के लिए इतिहास में चलिए।

अगर इतिहास में जाएंगे तो आप देखेंगे कि सन् 1990 के बाद पूरी अर्थव्यवस्था और साथ ही हमारी सामाजिक नीतियों में तेजी के साथ परिवर्तन हुआ है। और यह परिवर्तन देश की 78 फीसदी गरीब जनता के खिलाफ हुआ है जिसकी परिभाषा अर्जुन सेन गुप्ता की रिपोर्ट में दो साल पहले दी गई। यह वह तबका है जो रोज महज 20 रुपए में गुजर करता है। यानी भारत में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली जनंसख्या 26 फीसदी नहीं है, जैसा कि योजना आयोग कहता है बल्कि 78 फीसदी है, जिसके बारे में अर्जुन सेन गुप्ता की रिपोर्ट आंकडों के आधार पर बता रही है। इस श्रेणी के बच्चों को जब हमने 60 साल से अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा नहीं दी, जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के दिशा निर्देशक सिद्धान्त का आदेश है तो 1991 की वैश्वीकरण की घोषणा के बाद कैसे देंगे ! अब सवाल है कि वैश्वीकरण क्या है और यह शिक्षा को कैसे प्रभावित कर रहा है ?

वैश्वीकरण उस चीज का नाम है, मैं इसे अपने नजरिए से पेश कर रहा हूं, जिसके तहत भारत सरकार ने तय किया हम अपनी अर्थव्यवस्था के दरवाजे दुनिया के कारोबार के लिए बेलगाम खोल देंगे और यह बेलगाम महत्त्वपूर्ण शब्द है। अमेरिका लगाम के साथ खोलेगा। वह जापान की मोटर गाड़ी से इतना घबराता है कि उसके आयात के लिए ढेरों नियम बनाता है। वह चेन्नई में बने हुए कपड़ों से इतना घबराता है कि मद्रास क्लॉथ से कपड़ा लेने में नियम लगाता है। वहां जो गेहूं पैदा होता है उस पर सरकार छूट देती है। यदि वहां छूट नहीं दें तो गेहूं पैदा होना बन्द हो जाएगा। जब हम भारत के किसानों को छूट देते हैं तो वह कहता है कि छूट कम करो या मत दो। विश्व स्वास्थ्य संगठन और दोहा वार्ताओं में यही सब बातें हो रही हैं। हम पर दबाव पड़ रहा है कि हम किसानों को जो थोड़ी बहुत छूट दे रहे हैं उसे बन्द करें लेकिन अमेरिका छूट बरकरार रखेगा। यह पूरा नजरिया ऐतिहासिक नजरिया है। इस नजरिए से देखें तो वैश्वीकरण की घोषणा के तुरन्त बाद जब भारत सरकार ने विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सामने अपनी झोली कर्जे के लिए फैलाई तो उन्होंने कहा कि एक शर्त लगेगी और शर्त थी 'संरचनात्मक समायोजन' की। इस शर्त के तहत यह कहा गया कि भारत सरकार आने वाले सालों में शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य जन कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्चा घटाएगी। इन क्षेत्रों में बजट का आवंटन कम करेगी। और ठीक वही उस आदेश के कारण भारत सरकार ने किया। पिछले 20 सालों में हमने लगातार शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च को सकल राष्ट्रीय उत्पाद यानी देश की आमदनी के अनुपात में घटाया है। इसका विस्तृत विश्लेषण मैंने अपने एक अन्य लेख में किया है। मेरा विश्लेषण सरकारी आंकड़ों पर आधारित है। जन कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च लगातार घटाया गया। 1990 में हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद का चार फीसदी खर्च कर रहे थे और आज साढ़े तीन फीसदी खर्च कर रहे हैं जबकि मंदी के बावजूद आज हमारी सकल राष्ट्रीय आमदनी तिरेपन लाख

करोड़ रुपए है। धन्यवाद दीजिए देश के सार्वजनिक क्षेत्र और सार्वजनिक बैंकों को जिन्होंने हिन्दुस्तान को मंदी के दौर से बचा लिया। अन्यथा हम भी अमेरिका के रास्ते पर बढ़ गए होते। अंत में भारत का पुराना समाजवादी सिद्धान्त ही काम आया जिसने हिन्दुस्तान को मंदी के दौर से बचा लिया। यदि तिरेपन लाख करोड़ रुपए का एक फीसदी गिनते हैं तो तिरेपन हजार करोड़ रुपए होता है और इसका आधा फीसदी गिनते हैं तो सत्ताईस हजार करोड़ रुपए होता है। शिक्षा के लिए सत्ताईस हजार करोड़ रुपए अतिरिक्त दिया जाता, जिसे कम कर दिया गया। हर साल सत्ताईस हजार करोड़ रुपए मिलता तो उसका हिसाब लगाइए। इसके क्या मायने हैं ? इस कानून के भी सन्दर्भ में वे दसियों हजार करोड़ रुपए काट रहे हैं क्योंकि हमको कॉमनवेल्थ गेम्स करने हैं और उसके लिए पैसा निकालना है। कॉमनवेल्थ गेम्स भारतीय संविधान में किसी का- न कॉरपोरेट घरानों का, न ही भारत की जनता का- मौलिक अधिकार नहीं है। लेकिन उसके लिए कोई रोक-टोक नहीं है। अब वैश्विक स्तर पर उसकी जितनी आलोचना हो रही है उतनी ही ज्यादा तिजोरी दस दिन के तमाशे को सफल बनाने के लिए खोली जा रही है। काश ! यह तिजोरी भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए खोल दी होती जो कि मौलिक अधिकार है। मौलिक अधिकार के लिए तिजोरी नहीं खुलती और जो मौलिक अधिकार नहीं है उसके लिए तिजोरी खुलती है। और हम सब मध्यम वर्ग के लोग खुश हैं कि कॉमनवेल्थ गेम्स होने वाले हैं। हम सोचें, यह सब सवाल हमारे अपने ऊपर हैं। हम एक शिक्षित समाज के हिस्से हैं। गांधी तो यही सवाल उठाते थे कि अपने से पूछो। लोहिया और जयप्रकाश नारायण भी यही कहते हैं।

> **"हम इस कानून वाली मुफ्त शिक्षा की बात समान स्कूल प्रणाली में नहीं कर रहे हैं, इस कानून को ध्यान से पढ़िए और मुझे वह वाक्य दिखा दीजिए जहां लिखा हुआ है कि सब बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाएगी। मैंने तो बहुत ढूंढ़ लिया, आप ढूंढ़ लीजिए। उसमें कहीं नहीं लिखा है कि हम मुफ्त शिक्षा देंगे।"**

संरचनात्मक समायोजन के नाम पर खर्च घटाया गया। लेकिन खर्च कैसे घटाया गया ? जब 1991 में ये शर्तें हम पर लागू की गईं उस समय हमारे यहां लगभग दस लाख स्कूल थे। आज बारह लाख स्कूल हैं। उस समय 300 विश्वविद्यालय थे और आज 400 हैं। उस समय 8 हजार कॉलेज थे और आज 18 हजार हैं। उस व्यवस्था से खर्च कम कैसे किया जाएगा ? विश्व बैंक तो अपनी पूरी तैयारी के साथ आता है, वह कभी अधकचरी तैयारी से नहीं आता। उसने कहा कि हमने तैयारी कर ली है। हम आपकी स्कूल व्यवस्था में खर्च कम करने की एक रणनीति बनाकर लाए हैं और इस रणनीति का नाम होगा 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम'। इसे हिन्दुस्तान में लागू किया गया। यह योजना 18 राज्यों में लागू की गई। वह भारत की स्कूल व्यवस्था को खत्म करने का एक प्रयोग था और यह प्रयोग सफल हुआ। उस 9 साल की परियोजना के दौरान भारत की स्कूल व्यवस्था धीरे-धीरे खत्म की गई। कैसे खत्म की गई ? खर्च कैसे घटाया गया ? उन्होंने कहा, 'हम बताते हैं'। साथ ही कहा, 'आप क्यों मान्यता एवं प्रशिक्षण प्राप्त, वेतन पाने वाला शिक्षक नियुक्त करते हैं। इसकी क्या जरूरत है ? क्या मान्यताविहीन, प्रशिक्षणविहीन, वेतनविहीन शिक्षक से काम नहीं चलेगा ?' हमने कहा, 'हाऊ जी, चलेगा' (मैं अपने यहां की भाषा काम में ले रहा हूं। बुंदेलखण्ड में हां को हाऊ जी बोलते हैं) और इस तरह काम चलने लगा। इस प्रकार पैरा-शिक्षक की नई कल्पना आई। मध्य प्रदेश, जिसमें जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम सबसे बड़ा कार्यक्रम था, के मुख्यमंत्री ने 1995 में घोषित कर दिया कि 'शिक्षक एक मृतप्रायः केडर' है और शिक्षक संगठन चुप बैठे रहे। फिर विश्व बैंक ने कहा, 'आपकी संसद में पारित 1986 की शिक्षा नीति क्या बोलती है कि प्राथमिक स्कूल में तीन शिक्षक और तीन कमरे दिए जाएंगे ! इसकी क्या जरूरत है ? क्या दो शिक्षक और दो कमरों से काम नहीं चलेगा ?' हम बोले, 'हाऊ जी, चलेगा।' इस प्रकार संसद के द्वारा पारित शिक्षा नीति और ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के मापदण्ड बिना संसद में उसकी स्वीकृति लिए विश्व बैंक ने हटा दिए।

यह नवउदारवाद का एक बहुत बड़ा चिह्न है जिसे हम पहचानने में चूक करते हैं। जब लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की जगह बाजार व्यवस्था लागू की जाती है और बाजार व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के ऊपर हावी हो जाती है या लोकतंत्र की जगह ले लेती है, भारत में आज ऐसा हो चुका है। मैंने अभी शिक्षा के संदर्भ में विचार रखे हैं लेकिन यही स्थिति आपको जल, जंगल, जमीन और जीविका आदि के सभी सवालों पर है। आज नदियां बिकती हैं, पहाड़ बिक रहे हैं। हिन्दुस्तान बिक रहा है। यह सब इसी नीति के तहत हुआ है और अब लोकतंत्र के ऊपर बाजार हावी है और बाजार ही निर्णय ले रहा है, लोकतंत्र निर्णय नहीं ले रहा है। किसी ने बहुत सुन्दर लेख लिखा है कि हिन्दुस्तान में पिछले 20 साल से जो कायदे-कानून लागू हो रहे हैं वे अमेरिका की राजधानी वांशिगटन डीसी की 19 से 23 वीं गली के बीच में लिए जाते हैं। उनमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ और दुनियाभर की तमाम दानदाता संस्थाओं के ऑफिस हैं, जिनका पैसा उनकी अपनी शर्तों पर देश के दूर-दराज के गांवों तक आता है।

जब यह सब हो चुका तो अगली बार 1996 में उन्होंने कहा कि, 'दो शिक्षक क्यों जरूरी हैं ? क्या एक शिक्षक से काम नहीं चलेगा ?'

हमने कहा, 'हाऊ जी, लेकिन हमको समझ में नहीं आ रहा है कि कैसे चलेगा ?' उन्होंने कहा, 'क्या पांच कक्षाओं को एक शिक्षक नहीं पढ़ा सकता है ? हम समझाते हैं, हम एक चमत्कार करेंगे जिसका नाम होगा 'बहुकक्षायी अध्यापन'।' बहुकक्षायी अध्यापन का नारा दिया और अचानक देश में दो लाख शिक्षकों को बहुकक्षायी अध्यापन का प्रशिक्षण चमत्कार करने के लिए मिल गया। इसके तहत अब एक ही कमरे में, एक ही शिक्षक, एक ही समय में पांच कक्षाओं को पढ़ा सकता है। भारत की जनता ने, भारत के राजनेताओं ने इसे स्वीकार कर लिया। इसी के तहत शिक्षा गारंटी केन्द्र स्थापित हुए। पहले 1997 में मध्य प्रदेश में तीस हजार शिक्षा गारंटी केन्द्र खुले और अगले साल 1998 में जब केन्द्र में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार आई तो उस सरकार के शिक्षामंत्री डॉक्टर मुरली मनोहर जोशी ने जब पहला बजट पेश किया, उसमें कांग्रेस की शिक्षा गारंटी केन्द्रों की योजना को पूरे हिन्दुस्तान की शिक्षा गारंटी केन्द्र की योजना बना दिया। मैं इन उदाहरणों से केवल इतना कहना चाहता हूं कि जब आर्थिक और सामाजिक नीतियों का सवाल आता है तो कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के फर्क नगण्य हो जाते हैं या खत्म हो जाते हैं और अब तो सभी विचारधारा के राजनीतिक दलों की नीतियां इन मुद्दों पर एक हो चुकी हैं।

इसका नतीजा यह हुआ कि एक शिक्षक या बहुकक्षायी अध्यापन वाली कक्षाएं केवल गरीब बच्चों के लिए हैं। आपके और हमारे बच्चों के लिए बकायदा हर कक्षा में अलग शिक्षक होगा। खेल का शिक्षक अलग होगा, संगीत का अलग और कला का अलग होगा क्योंकि वे देहली पब्लिक स्कूल, कॉन्वेंट अथवा सेंट जोसेफ में जाएंगे। इन बच्चों की पांच कक्षाओं के लिए भी एक ही शिक्षक काफी क्यों नहीं है ? इस तरह हमारे यहां का पांच हजार साल पुराना आदिवासी और दलित एजेण्डा इस भारतीय लोकतंत्र में वैधानिकता पा गया क्योंकि योजना आयोग ने इसे स्वीकृति दे दी। तभी वह शिक्षा गारंटी केन्द्र अखिल भारतीय योजना बने। इस प्रकार हमारी स्कूल व्यवस्था की विश्वसनीयता 90 के दशक के अंत तक इतनी घटा दी गई कि गरीब व्यक्ति भी अपने बच्चे को सरकारी स्कूल में भेजने से कतराने लगा। सरकारी स्कूल के शिक्षक तो पहले ही कतरा गए थे, अब गरीब वर्ग के बच्चे भी वहां जाने से कतराने लगे। जब नवउदारवाद की यह जीत हो गई तब इसे पक्का करने और आधे जिलों की जगह पूरे जिलों में फैलाने के लिए एक नया पैकेज आया, नए चमकीले लेबल के साथ। उस लेबल का नाम था 'सर्व शिक्षा अभियान'।

सर्व शिक्षा अभियान में जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना के सारे विरोधाभासों और खामियों का नया पैकेज बनाकर दोबारा पेश कर दिया गया और यह दसवीं पंचवर्षीय योजना का हिस्सा बना। फिर एक बार नारे दिए गए कि 2010 आते-आते भारत के सभी बच्चे आठ साल की शिक्षा जरूर खत्म कर लेंगे। अगले साल आ जाएगा 2010 और यह वादा तो पूरा नहीं होगा, इसकी जगह कॉमनवेल्थ गेम्स जरूर हो जाएंगे। आज भी पहली कक्षा में भर्ती होने वाले आधे से अधिक बच्चे कक्षा 8 तक की शिक्षा पूरी नहीं करते। और यदि आप इसमें उन बच्चों को भी शामिल कर लें जो स्कूल में भरती ही नहीं होते, जो लगभग 15 से 20 फीसदी हैं, तो इसका मतलब होगा देश के 70 प्रतिशत बच्चे 8 वीं कक्षा की शिक्षा पूरी नहीं करते। देश के दो तिहाई बच्चे 10 वीं कक्षा के पहले और 80 फीसदी बच्चे 11 वीं कक्षा के पहले स्कूल छोड़ देते हैं और महज 8 फीसदी दलित और 6 फीसदी आदिवासी बच्चे 12 वीं कक्षा पास करते हैं। ये सरकारी आंकड़े हैं। इस कगार पर पहुंचने के बावजूद हम सपना देखते और दिखाते हैं कि 2020 तक हम दुनिया की महाशक्ति बन जाएंगे। मैं तो यह भी पूछना चाहता हूं कि हम महाशक्ति क्यों बनना चाहते हैं ? क्या हम भी किसी पर हमला करना चाहते हैं ? अमेरिका ने ईराक पर हमला किया, क्या हम ईरान, नेपाल या अफगानिस्तान पर हमला करेंगे ? हम वह सपना क्यों नहीं देखते हैं जो हमारी बगल का नन्हा-सा मुल्क भूटान, जो हमसे सहायता लेकर जिंदा रहता है, राष्ट्रीय खुशहाली और एक खुशहाल देश बनाने का देखता है ? इसलिए वह सकल खुशहाली का सूचकांक बनाता है। वह सकल आय का सूचकांक नहीं बनाता। यह पूरे नजरिए और दृष्टि का सवाल है और इसीलिए दृष्टि महत्त्वपूर्ण है।

आज हम उस कगार पर पहुंच गए हैं जहां यह मान चुके हैं कि हम बच्चों को शिक्षित नहीं कर सकते। लेकिन यह सब हो चुकने के बाद और इस कानून के बनने से पहले तक कोई कभी भी कोई सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायाल में जाकर दरवाजे खटखटा सकता था और कह सकता था कि यह बात संविधान का उल्लंघन है और इसके लिए ये आदेश पारित किए जाएं ताकि सभी बच्चों को समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा मिले। सरकार को इसका अंदेशा 1993 में हो गया था जब सर्वोच्च न्यायालय ने उन्नीकृष्णनन फैसला दिया। उन्नीकृष्णनन फैसला कोई पहला और अजीबो-गरीब फैसला नहीं था। इसके पहले और भी ऐसे फैसले आए जिनमें इसी तरह की आवाज उठ रही थी। उन्नीकृष्णनन फैसला अंतिम फैसला था। वह फैसला क्या था ? सर्वोच्च न्यायालय तो संविधान बनाता नहीं है। वह तो केवल संविधान की व्याख्या संविधान के दायरे में ही करता है। इसलिए संविधान के दायरे में रहते हुए उसने व्याख्या की कि संविधान के अनुच्छेद 45 के खण्ड 4 में, जिसे दिशा निर्देशक सिद्धान्त का खण्ड माना जाता है, वह वास्तव में मौलिक अधिकार का अनुच्छेद है और खण्ड 3, जो मौलिक अधिकार का खण्ड है, का

अनुच्छेद 21 जो जीने का अधिकार देता है, वह जीने का अधिकार अपूर्ण और अधकचरा है जब तक उसमें ज्ञान नहीं होगा और ज्ञान का प्रमुख स्रोत शिक्षा है। इसलिए अनुच्छेद 45, जो कहता है कि 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को संविधान लागू होने के दस वर्ष के भीतर यानी सन् 1950 तक, शिक्षा दे दी जाएगी। क्योंकि सरकार यह करने में असफल हो चुकी है इसलिए अब वह अनुच्छेद 21 के जीने के अधिकार देने के लिए मौलिक अधिकार बन गया है। अतः अनुच्छेद 21 और 45 को एक साथ जोड़कर पढ़ा जाए। उन्होंने बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा- 'हम अपने संविधान को एक रचनात्मक ढंग से पढ़ेंगे'। इसलिए उस दिन, 1993 में, अनुच्छेद 45 में 14 साल तक के बच्चों को दिया गया अधिकार एक मौलिक अधिकार बन गया था। यह इस कानून के आने से नहीं बना है, यह तब ही बन गया था। एक बहुत बड़ी गलतफहमी सरकार ने फैलाई और कुछ बुद्धिजीवियों ने सरकार की इस गलतफहमी को फैलाने में मदद की है कि यह नया अधिकार मिला है। जैसे ही 1993 में यह मौलिक अधिकार बना तो हम ऐसा सोच सकते हैं कि शायद केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें खुश हुई होंगी। इसका असर ठीक इसके उल्टा हुआ। वे घबरा गईं, इतनी घबरा गईं कि केन्द्र सरकार ने तुरन्त कार्यवाही चालू कर दी कि किस तरीके से सर्वोच्च न्यायालय के इस आदेश से मिलने वाले मौलिक अधिकार की जवाबदेही से मुक्ति मिले। इसलिए इसके तुरंत बाद 90 के दशक में तमाम समितियां बनीं। हर समिति ने बताया कि किस तरह उन्नीकृष्णनन फैसले से निकलने वाली संवैधानिक जवाबदेही से सरकार मुक्त हो जाए और कैसे यह मौलिक अधिकार शिथिल या विकृत हो जाए। सन् 1997 में तत्कालीन संयुक्त मोर्चा सरकार ने संविधान में संशोधन के लिए पहला विधेयक पेश किया जिसमें उन्नीकृष्णन फैसले से मिले मौलिक अधिकार को शिथिल और विकृत करने की पूरी योजना थी। लेकिन इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व वाली वह सरकार जल्दी ही गिर गई। इसलिए पुनः चुनाव हुए और 1998 में जनतांत्रिक गठबंधन की अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली नई सरकार बनी और 2001 में, उनको तीन साल अपना मन बनाने में लगे और जो विधेयक 1997 में लाया गया था, मामूली संशोधन के साथ फिर संसद में नवम्बर 2001 में पेश किया गया और लोकसभा में पूर्ण सहमति से पारित हुआ। एक भी वोट उसके खिलाफ नहीं पड़ा और चन्देक महीनों बाद अप्रैल या मई 2002 में पूर्ण सहमति से पारित हुआ और दिसम्बर 2002 में उस पर राष्ट्रपति के दस्तखत हुए। मेरा मानना है कि 86 वां संविधान संशोधन भारतीय संविधान में सीधे-सीधे वैश्विक बाजार के हस्तक्षेप का परिणाम है। यह नवउदारवादी नीति, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का हस्तक्षेप है जिसके कारण 86 वां संविधान संशोधन लाया गया है। यह उस संविधान में हस्तक्षेप है जो हमारी 100 साल की आजादी की सजीव लड़ाई का परिणाम है और जिसका नेतृत्व बाबा साहब अंबेडकर ने किया। उस संविधान में हस्तक्षेप करके समानता, सामाजिक न्याय पर हमला किया गया और संविधान में 86 वां संशोधन लाकर शिक्षा की हमारी पूरी दृष्टि खण्डित कर दी गई। इसके तहत छः साल से नीचे वाले बच्चों का अधिकार छीन लिया गया। छः साल से कम आयु के बच्चों की आबादी 17 करोड़ है जो आस्ट्रेलिया की कुल आबादी से अधिक है। 2001-02 में छः साल से कम आबादी के 17 करोड़ बच्चे थे। जब उनका अधिकार छीना गया तो हम सभी चुप थे, वह अधिकार मुफ्त पूर्व प्राथमिक शिक्षा का था। साथ ही वह अधिकार संतुलित आहार, सेहत की पूरी व्यवस्था और उनकी पूरी देखरेख का पूरा मौलिक अधिकार बन चुका था, उसे पूरी तरह से छीन लिया। कुछ लोग कहते हैं कि, चलो 6 साल तक के बच्चों से यह अधिकार छीन लिया तो कोई बात नहीं, उसकी लड़ाई तो हम आगे लड़ लेंगे। कम से कम 6 से 14 साल के 19 करोड़ बच्चों को तो मिल गया। मेरा सवाल है कि 6 से 14 साल के बच्चों को क्या मिला ?

> **“संविधान में हस्तक्षेप करके समानता, सामाजिक न्याय पर हमला किया गया और संविधान में 86 वां संशोधन लाकर शिक्षा की हमारी पूरी दृष्टि खण्डित कर दी गई। इसके तहत छः साल से नीचे वाले बच्चों का अधिकार छीन लिया गया। छः साल से कम आयु के बच्चों की आबादी 17 करोड़ है जो आस्ट्रेलिया की कुल आबादी से अधिक है। 2001-02 में छः साल से कम आबादी के 17 करोड़ बच्चे थे।”**

यह सवाल मैं आपसे बड़ी देर से पूछ रहा हूं, बार-बार दोहरा रहा हूं। मुफ्त शिक्षा का अधिकार मिला नहीं, वह तो छीन लिया। जो हमारे संविधान में था, यह कानून बनाकर उसे छीन लिया गया। अब 86 वें संविधान संशोधन का परिणाम जो अनुच्छेद 21(अ) है जिसे खण्ड 3 के मौलिक अधिकारों में जोड़ा गया, उसमें अधिकार छीनने के सारे गुर छिपे थे। अब अनुच्छेद 21(अ) कहता है, 6 से 14 आयु समूह के बच्चों को निःशुल्क आरंभिक शिक्षा उस रीति से दी जाएगी जिसे राज्य कानून बनाकर निर्धारित करेगा।

मैं दोहरा रहा हूं, निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा उस रीति से दी जाएगी, जो राज्य कानून बनाकर निर्धारित करेगा। आप भारत के संविधान को पढ़िए, यह मेरी बाईबल, गीता, कुरान है, मुझे एक भी मौलिक अधिकार, जो 26 जनवरी 1950 से मूल रूप में भारतीय संविधान में शामिल था, उसमें दिखा दीजिए जिनमें किसी भी मौलिक अधिकार के ऊपर सरकार को शर्तें लगाने का अधिकार है। इस

अधिकार में यह वाक्यांश जोड़कर कि, उस रीति से दिया जाएगा जो राज्य कानून बनाकर निर्धारित करेगा, सरकार ने अपने लिए संवैधानिक गुंजाइश खड़ी कर दी कि अब हम मनमानी कर सकेंगे। यह मंशा थी इसके पीछे। यह मंशा क्यों थी ?

जैसा कि मैंने कहा, भारतीय स्कूल व्यवस्था पर नवउदारवादी हमले को वैधानिकता प्रदान करनी थी। वह वैधानिकता प्रदान करने के लिए भारतीय संविधान में ऐसा संशोधन करना जरूरी था। अनुच्छेद 21(अ) ने वह आधार प्रदान किया जिसके तहत यह कानून लाया गया। यह कानून संविधान के अनुच्छेद 21(अ) के तहत आया है। यह इस कानून का इतिहास है और जो लोग इस कानून की पैरवी करते हैं, उनसे इसके इतिहास की मांग कीजिए और पूछिए कि इस इतिहास का जिक्र आप क्यों नहीं करते हैं ? इस इतिहास को बिना समझे हम कैसे समझेंगे कि भारत में क्या हुआ। 4 अगस्त 2009 का पारित इस कानून के इतिहास के लिए कम से कम 1993 उन्नीकृष्णनन फैसले तक तो जरूर देखिए। मैं तो इसके भी पहले जाना चाहूंगा। यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है। इसके पैरवीकार इस सवाल को क्यों नहीं उठाते ? वे इतिहास से क्यों कतराते हैं ? इतिहास से हम इसलिए कतराते हैं क्योंकि इतिहास का सामना करते ही यह हकीकत हमारे सामने आ जाती है। यह कानून किस ऐतिहासिक प्रक्रिया का प्रतिफल है ? इसलिए मैं इतिहास की बात कर रहा हूं। आप समझ जाएंगे असलियत क्या है।

साथियो, संक्षेप में बात करते हुए, मैंने इस कानून पर अपनी पुस्तिका के अंत में 7 सवाल रखे हैं। ये सरकार और संसद से हमारे 7 सवाल हैं। इसमें इसके जवाब भी दिए गए हैं। मैं उनसे अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा। क्या इस कानून से सब बच्चों को मुफ्त शिक्षा मिल पाएगी ? इस प्रश्न के मेरे हिसाब से उत्तर नहीं है। क्यों ? इसका जवाब मैं दे चुका हूं। क्या हमारी शिक्षा नीति का पड़ोसी स्कूल का वायदा सब बच्चों को मिल पाएगा ? इसका जवाब भी नहीं में है और इसका कारण भी बता चुका हूं। क्या बगैर भेदभाव के शिक्षा मिल पाएगी ? कतई नहीं, क्योंकि जो दोहरी शिक्षा 1960 के दशक में भारत में थी और जिसके खिलाफ राम मनोहर लोहिया ने एक बुलंद आवाज खड़ी की थी कि दोहरी शिक्षा नहीं चाहिए, उन्होंने एक नारा दिया- 'चाहे राष्ट्रपति की हो या चपरासी की संतान, सबको शिक्षा एक समान'। हमारा भी यह नारा है। यह नारा दोहरी शिक्षा प्रणाली के खिलाफ था। यदि लोहिया जिन्दा होते तो मान जाते कि अब दोहरी शिक्षा का नारा गैर-प्रासंगिक हो गया है क्योंकि अब दोहरी शिक्षा भारत में नहीं है, अब बहुपरती शिक्षा व्यवस्था है। यदि मैं एक समाजशास्त्री की बात कहूं तो वह कहेगा, 'जैसा समाज है वैसी ही स्कूल व्यवस्था होगी'। इसे निराशा में डूबा हुआ एक वाक्य कहा जाता है। भारत के एक महान शिक्षाविद् लिख रहे हैं कि, 'जब समाज बंटा हुआ है तो स्कूल कैसे एक होंगे'। समाज तो अमेरिका का भी बंटा हुआ है। फ्रांस का समाज भी बंटा हुआ है। परन्तु जिन भी कारणों से अमेरिका या फ्रांस इत्यादि ने यह फैसला लिया कि हम समाज और राज्य को जोड़ने, स्कूल को जोड़ने और समाज के बीच पैदा हो गए फासले को घटाने के लिए शिक्षा का इस्तेमाल करेंगे। हमारे यहां यह फैसला क्यों नहीं लिया गया ? हमारे यहां तो बहुपरती शिक्षा को इस कानून ने वैधानिकता प्रदान कर दी है। यह वैधानिकता हमेशा रहेगी, जब तक यह कानून रहेगा। क्या शिक्षकों का स्तर ऊंचा उठेगा ? मैंने चर्चा की है कि पैरा टीचर को बरकरार रखने के लिए इस कानून में काफी प्रावधान हैं। योजना आयोग ने लाखों करोड़ रुपए देने का प्रावधान किया है कि हम इस कानून के बाद जो शिक्षक नियुक्त होंगे उनको महज दो हजार, तीन हजार या पांच हजार रुपए तनख्वाह मिलेगी। इसे वैधानिकता प्रदान करने के लिए योजना आयोग ने दो लाख अट्ठाईस हजार करोड़ रुपए का एक बजट पारित किया था। हमारे वर्तमान शिक्षामंत्री कपिल सिब्बल साहब ने घटाकर एक लाख पिचहत्तर हजार करोड़ रुपया कर दिया। मीडिया भी इसे कितनी बड़ी राशि कहता है। यह 53 हजार करोड़ रुपए कमाने वाले हिन्दुस्तान के लिए कुछ भी बड़ी राशि नहीं है जो कि कॉमनवेल्थ गेम्स में डेढ़ लाख करोड़ रुपए की छूट दे रहा है। क्या निजी स्कूलों द्वारा महंगी शिक्षा लेना या मनमानी फीस ऐंठना बंद हो जाएगा ? साथियो, इस कानून में तो राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों की फीस नियंत्रण की जिम्मेदारी ही नहीं मानी गई है। बल्कि ऐसे राज्य जहां फीस नियंत्रण के लिए पहले से बने हुए कानून हैं, जैसे कि दिल्ली में जहां कानून शिक्षा कानून 1973; जिसमें दिल्ली सरकार को कहा गया है कि एक भी निजी स्कूल फीस का पैसा नहीं बढ़ा सकता और यदि बढ़ाए तो उस पर तुरंत समिति बनाकर नियंत्रण और नियमन की कार्यवाही की जाए। उस प्रदेश में भी अभिभावक संगठन फीस कम करने की लड़ाई हार गए। यह केन्द्रीय कानून तो इसकी जरूरत ही नहीं बता रहा। आप कल्पना कीजिए, तब वे सारे कानून स्वतः ही अमान्य हो जाएंगे और प्रदेशों में इस तरह के कानून नहीं हैं उनकी बात करना ही बेकार है। क्या सरकारी स्कूल नर्सरी और किंडर गार्डन जैसी अच्छी पूर्व प्राथमिक शिक्षा दे पाएंगे ? इस कानून में इसके लिए कोई प्रावधान नहीं है। यदि स्कूलों की मर्जी होगी तो दे देंगे लेकिन अभी 60 साल से तो मर्जी नहीं हुई और अगले 60 साल से मर्जी नहीं होने वाली है। क्या सब बच्चों को 9 वीं से 12 वीं तक की उच्च माध्यमिक शिक्षा मिल पाएगी ? यह बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है। यह ऐसे ही पूछा हुआ सवाल नहीं है। आज भी रोजगार का दरवाजा, मैं रोजगार बोल रहा हूं नरेगा में रोजी-रोटी के लिए

मिट्टी खोदने या सौ दिन के न्यूनतम मजदूरी की बात नहीं कह रहा हूं, 12 वीं कक्षा के प्रमाण पत्र के बगैर नहीं खुलता। यहां तक कि आईटीआई में भी अब प्रवेश के लिए 12 वीं कक्षा के प्रमाण पत्र की आवश्यकता पड़ती है। हर रोजगार के लिए पड़ती है। यदि आप देश के केवल 8 फीसदी दलित और 6 फीसदी आदिवासियों को यह पात्रता दे रहे हैं, उसको 12 वीं कक्षा पास करने का मौलिक अधिकार भी दे रहे हैं, उसके लिए समान अवसर भी दे रहे हैं, तो यह कानून किसके लिए बना है ? केवल भारत के अभिजात तबके और भारत के शासक वर्ग के लिए ?

एक और तर्क दिया जाता है, 'भई कुछ तो मिल गया'। मैं इतनी देर से पूछ रहा हूं क्या मिला ? वे कहते हैं, 'अच्छा और कुछ नहीं मिला तो कम से कम यह तो उसमें लिखा है कि बच्चों पर बिना वजह बोझा नहीं डाला जाएगा'। हां, इस कानून में लिखा है कि बच्चों को बोझिल शिक्षा नहीं दी जाएगी।

तब बच्चों को बोझिल शिक्षा न देने के लिए वैकल्पिक पाठ्यक्रम की जरूरत है, उस वैकल्पिक पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए उन न्यूनतम मानदण्डों जिनका मैं जिक्र कर चुका हूं, न्यूनतम मापदण्ड चाहिएं। यदि अच्छी गुणवत्ता के लिए न्यूनतम मापदण्ड नहीं दिए जाएंगे तो कभी भी वैकल्पिक पाठ्यक्रम जो बच्चों को बोझिल शिक्षा से मुक्त करता है, वह इस घटिया स्कूल व्यवस्था में दिया ही नहीं जा सकता। क्या घटिया स्कूल व्यवस्था का कोई मौलिक अधिकार होता है ? क्या भेदभावपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का कोई मौलिक अधिकार होता है ? क्या गैर-बराबरी की शिक्षा कोई मौलिक अधिकार होता है ? यदि आपका उत्तर 'नहीं' है तो हमारे साथ आकर खड़े हो जाइए। और यदि आपका जवाब 'हां' तो मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की उस कविता का जिक्र करुंगा जिसमें कहा गया है कि अगर आप भोजन कर रहे हैं और आपके बगल के कमरे में एक लाश पड़ी है, तब भी आप आराम से भोजन का स्वाद ले सकते हैं, तो मुझे आपको कुछ नहीं कहना।

> **"पैरा टीचर को बरकरार रखने के लिए इस कानून में काफी प्रावधान हैं। योजना आयोग ने लाखों करोड़ रुपए देने का प्रावधान किया है कि हम इस कानून के बाद जो शिक्षक नियुक्त होंगे उनको महज दो हजार, तीन हजार या पांच हजार रुपए तनख्वाह मिलेगी। इसे वैधानिकता प्रदान करने के लिए योजना आयोग ने दो लाख अट्ठाईस हजार करोड़ रुपए का एक बजट पारित किया था। हमारे वर्तमान शिक्षामंत्री कपिल सिब्बल साहब ने घटाकर एक लाख पिचहत्तर हजार करोड़ रुपया कर दिया।"**

आखिरी बात, इसका बहुत शोर है कि यह कानून समावेशन के लिए बनाया गया है। अभी यहां के कुलपति जी ने इसका जिक्र किया था कि कम से कम समावेशन हो रहा है तो इसे मान लीजिए। मेरा जवाब है कि आज सवाल समावेश का नहीं है। सवाल समानता का है। समावेश को समानता की जगह लाया जाता है। मैंने इस विषय पर लिखा है क्योंकि हमारी 11 वीं पंचवर्षीय योजना का नाम ही है 'समावेशी वृद्धि'। समावेशी नीति की बात तभी की जाती है जब संविधान के समानता के सिद्धान्त को नकार दिया जाता है। जिस समाज की पुनःरचना समानता के सिद्धान्त पर की जा रही हो, वहां समावेश का सवाल गौण हो जाता है। 11 वीं पंचवर्षीय योजना की समावेशी वृद्धि का लब्बोलबाव यही है कि समावेश किसका करना है और किसका नहीं, किन मापदण्डों पर करना है और किसके फायदे के लिए करना है ? इसका जबाव है बाजार के फायदे के लिए करना है। यह सब वैश्विक बाजार के हित को देखकर भारत का शासक वर्ग तय करेगा।

इस कानून के पैरवीकार दिसम्बर 2008 तक, जब यह विधेयक राज्य सभा में पेश किया गया था, कह रहे थे कि इस विधेयक से बेहतर कोई विधेयक हो ही नहीं सकता क्योंकि इसमें कोई गड़बड़ है ही नहीं। इसमें गड़बड़ की बात करने वाले आपको भ्रम में डाल रहे हैं। आज आठ महीने बाद स्वयं वे ही लोग लेख लिख रहे हैं कि हम मानते हैं कि इस कानून में बड़ी खामियां हैं। जब देश में जनता ने इस बात को कहना शुरू कर दिया तब वे कहते हैं, 'हां, मानते हैं इसमें खामियां हैं'। लेकिन अब उनका तर्क बदल गया है। अब वे कहते हैं कि 'एक नवउदारवादी सरकार से आप इससे बेहतर विधेयक या बेहतर कानून की अपेक्षा कैसे करते हैं'। जब आठ महीने पहले तक कोई खामी ही नहीं थी तो अब खामी कैसे उभरकर आ गई ? हम क्या कह रहे हैं- नवउदारवादी सरकार हमें तोड़ने, बहकाने, भटकाने और हमारी लड़ाई को भटकाने के लिए जो भी लॉलीपॉप फेंक दे, क्या उसे भारत की जनता स्वीकार कर ले ? मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं, जब ब्रिटिश राज में पत्रकारिता पर अंकुश लगाने के लिए रॉलेट एक्ट पास किया था, उस जमाने के देश के सारे राजनैतिक दल और आजादी की लड़ाई में शरीक सभी लोग एकमत होकर रॉलेट एक्ट के खिलाफ हो गए थे। जब रॉलेट एक्ट के खिलाफ हम खड़े हो सकते हैं, क्योंकि वह जनविरोधी और हमारी आजादी को रोकने वाला कानून था तो नवउदारवादी नीतियों के तहत, विश्व बैंक के आदेशों पर और वैश्विक बाजार के हितों को साधने के लिए भारत में लाए गए इस कानून का विरोध अगर जनता नहीं करेगी तो और कौन करेगा ?और जो जनता के विरोध के साथ खड़े नहीं हैं वे चाहे कितने ही बड़े बुद्धिजीवी और शिक्षाविद् क्यों न हों, वे नवउदारवाद के पक्षधर हैं, नवउदारवाद के साथ खड़े हैं, आम जनता के साथ नहीं। ◆